प्रश्न :- आदिकाल के नामकरण की समस्या पर प्रकाश डालें।

उत्तर :- आदिकाल से संबंधित जो अनेक विवादास्पद प्रश्न हैं, उनमें से प्रमुख है- आदिकाल के नामकरण की समस्या। हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों ने इस काल के लिए अलग-अलग नाम दिए हैं। कोई इसे प्रारम्भिक काल कहना है, तो को आदिकाल, कोई इसे वीरगाथाकाल कहना उपयुक्त मानता है तो कोई चारण काल। इस प्रश्न का समाधान करने से पूर्व हमें विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षा कर लेनी चाहिए।

1. आचार्य रामचन्द्रशुक्ल का मत :-

आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने संवत 1050 वि० से 1375 वि० तक के कालखंड को वीरगाथाकाल नाम दिया है, जिसे सामान्यतः हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने आदिकाल की संज्ञा प्रदान की है। आचार्य शुक्ल से पूर्व सर जार्ज ग्रियर्सन ने इसे चारणकाल और मिश्रबंधुओं ने आरम्भिक काल की संज्ञा प्रदान की थी। शुक्ल जी ने उक्त नामों को स्वीकार नहीं किया है तथा इस कालखण्ड की सामग्री को वीरगाथात्मक स्वीकारते हुए इसे वीरगाथाकाल का नाम दिया है।

शुक्ल जी की यह मान्यता रही है कि साहित्य का इतिहास जनता की चित्तवृत्ति का इतिहास होता है। जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन होने से साहित्य का स्वरूप (प्रवृत्ति) भी परिवर्तित होता है। जनता की चित्तवृत्ति का बहुत-कुछ निर्माण तद्युगीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, परिस्थितियों के अनुरूप होता है। अतः इन परिस्थितियों के सापेक्ष ही किसी विशेष कालखण्ड में विशेष प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। उन्होंने किसी कालखण्ड में पायी जाने वाली इस प्रधान-प्रवृत्ति को दृष्टिगत रखकर एवं इसी का आधार ग्रहण करते हुए उस काल का नामकरण किया है।

इनकी यह मान्यता रही है कि संवत् 1050 से 1375 वि० तक के कालखण्ड में जो साहित्यिक सामग्री उपलब्ध हो रही है, उसमें वीरगाथा की प्रवृत्ति प्रधान है, अतः इस कालखण्ड का नाम वीरगाथा काल रखा जाना चाहिए।

शुक्ल जी ने अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास में इस काल की उपलब्ध साहित्यिक सामग्री को जो विवरण दिया है, उसे दो भागों में विभक्त किया गया है —

(क)- अपभ्रंश काव्य

	पुस्तक का नाम	रचयिता
1.	विजयपाल रासो	नल्लसिंह
2.	हमीर रासो	शार्ङ्गधर
3.	कीर्तिलता	विद्यापति
4.	कीर्तिपताका	विद्यापति

(ख) देशभाषा काव्य

	पुस्तक का नाम	रचयिता
1.	बीसलदेव रासो	नरपति नाल्ह
2.	खुमान रासो	दलपति विजय
3.	पृथ्वीराज रासो	चंदबरदाई
4.	परमाल रासो	जगनिक
5.	जयमयंक जसचंद्रिका	भट्ट केदार (मधुकर)
6.	जयचन्द्र प्रकाश	भट्ट केदार (मधुकर)
7.	खुसरो की पहेलियाँ	अमीर खुसरो
8.	विद्यापति पदावली	विद्यापति

शुक्ल जी का मत है कि "इन्हीं बारह पुस्तकों की दृष्टि से 'आदिकाल' का लक्षण निरूपण और नामकरण हो सकता है। इनमें से अंतिम दो तथा बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रंथ वीरगाथात्मक ही हैं। अतः आदिकाल का नाम 'वीरगाथा काल' ही रखा जा सकता है।" इस कालखण्ड के अन्तर्गत उक्त

पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी उपलब्ध हो रही हैं किन्तु शुक्ल जी के अनुसार उनमें से कई तो धर्म-तत्व निरूपण सम्बन्धी हैं, अतः साहित्य की कोटि में नहीं आती और कुछ नोटिस मात्र हैं जिनमें विषयों का कोई विवरण नहीं है। शुक्ल जी ने इसी प्रसंग में मिश्रबंधुओं द्वारा दी गई दस अन्य पुस्तकों की सूची का भी उल्लेख किया है।

1. भगवद्गीता
2. बृहन्नवकार
3. वर्तमाल
4. संमतसार
5. पत्तलि
6. अनन्य योग
7. जंबू स्वामी रासा
8. रैवतगिरि रासा
9. नेमिनाथ चउपई
10. उवएस माला (उपदेशमाला)

उपर्युक्त पुस्तकों में से पहली तो बहुत पीछे की रचना है, अतः उसे वीरगाथाकाल में स्थान नहीं दिया जा सकता। दूसरी, सातवीं, नौवीं और दसवीं पुस्तक में जैन धर्म का तत्व निरूपण किया गया है, अतः वे साहित्य कोटि में नहीं आतीं। छठवीं पुस्तक में योग का विवेचन है तथा तीसरी और चौथी नोटिस मात्र हैं जिनमें विषयों का कुछ भी विवरण नहीं है, शेष बची दो पुस्तकें ही साहित्यिक हैं, जो वर्णनात्मक हैं, 'पत्तलि' में नंद के ज्योनार का वर्णन है, तो रैवतगिरि रासा में गुजरात के रैवतक पर्वत का।

शुक्ल जी का मत है कि ऐसी स्थिति में इन पुस्तकों की नामावली से मेरे निश्चय में किसी प्रकार का अंतर नहीं पड़ सकता, क्योंकि

वीरगाथाकाल नाम नौ प्रसिद्ध वीरगाथात्मक काव्यग्रन्थों के आधार पर किया गया है, उक्त पुस्तकों के आधार पर आदिकाल की कोई विशेष प्रवृत्ति निर्धारित नहीं की जा सकती, अतः इन्हें इस कालखण्ड के नामकरण का आधार बनाना युक्तिसंगत नहीं है।

- शुक्ल जी के मत की आलोचना :-

आचार्य शुक्ल ने कालों के नामकरण में प्रधान प्रवृत्ति का जो आधार ग्रहण किया है, वह उपयुक्त एवं तर्कसंगत भले ही हो, किन्तु विद्वानों के एक वर्ग ने उसकी तीव्र आलोचना की है। उन्होंने शुक्ल जी से असहमति व्यक्त की है और इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं—

(i) शुक्ल जी ने जिन ग्रन्थों के आधार पर इस काल की मूल-प्रवृत्ति निर्धारित की थी, वे ग्रंथ अप्रमाणिक, अप्राप्य अथवा परवर्ती काल के सिद्ध हो चुके हैं। जैसे —

(क) पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता संदिग्ध है, स्वयं शुक्ल जी इसे जाली ग्रंथ मानते हुए लिखते हैं— "इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं है कि यह पूरा ग्रंथ वास्तव में जाली है।"

(ख) खुमान रासो परवर्तीकाल की रचना है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अकाट्य तर्कों के आधार पर इसे 18 वीं शती की रचना सिद्ध कर दिया है।

(ग) जयमयंक जस चन्द्रिका और जयचन्द्र प्रकाश अप्राप्य हैं।

(घ) परमाल रासो भी मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। शुक्ल जी के अनुसार "यह गूँज मात्र है, मूल ग्रंथ नहीं।"

(ङ) बीसलदेव रासो ~~वीर~~ वीररस-प्रधान ग्रंथ न होकर शृंगार-प्रधान-काव्य ग्रंथ है।

(v) खुसरो की पहेलियाँ एवं विद्यापति पदावली भी वीररस-प्रधान ग्रंथ नहीं हैं, शुक्ल जी ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है।

(ii) शुक्ल जी ने केवल एक प्रवृत्ति को प्रधान मानकर वीरगाथा काल का नामकरण कर दिया, जब कि इस कालखण्ड में वीरता के अतिरिक्त अन्य प्रवृत्तियाँ भी समानान्तर रूप से चलती रहीं। इस प्रवृत्ति को प्रधानता देकर नामकरण कर देने का दृष्टिकोण सुविधाजनक भले ही हो, पर वह साहित्य की एकांगी और अधूरी व्याख्या है, जिसे वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता।

(iii) शुक्ल जी ने जैन कवियों के लिखे हुए ग्रन्थों को धार्मिक कहकर साहित्य की परिधि से निकाल दिया। उनका यह दृष्टिकोण भी उचित नहीं कहा जा सकता। उपदेश-विषयक वे रचनाएँ जिनमें धार्मिक प्रेरणा के साथ-साथ साहित्यिक सरसता भी है, उपेक्षणीय नहीं हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत उल्लेखनीय है। उनके अनुसार "धार्मिक प्रेरणा या आध्यात्मिक उपदेश होना काव्य को बाधक नहीं समझा जाना चाहिए।"

(iv) शुक्ल जी ने विद्यापति को वीरगाथा काल में स्थान दिया है, जिसकी अन्तिम सीमा में संवत् 1375 वि० निर्धारित करते हैं, जब कि विद्यापति का रचनाकाल स्वयं उन्होंने 1460 वि० स्वीकार किया है। पता नहीं क्यों, विद्यापति को 85 वर्ष पीछे खींचकर वीरगाथा काल में स्थान दिया गया है। प्रवृत्ति की दृष्टि से भी विद्यापति का काव्य वीरगाथात्मक न होकर भक्ति एवं शृंगार-प्रधान है।